पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, कलश २७१, ता. ०४-०८-१९९०
प्रवचन नंबर ५२२

यह समयसार जी परमागम शास्त्र है, उसका अंतिम परिशिष्ठ नाम का अधिकार है। उसमें २७१ नंबर का कलश, उसके ऊपर गुरुदेव ने व्याख्यान दिया है, उसके ऊपर स्पष्टीकरण चलता है।

शास्त्र में दो बात आती हैं, निश्चय और व्यवहार। तो व्यवहार की बात अनंतकाल से जीव को सत्य लगती है। व्यवहार की बात सत्य लगने से निश्चय की बात झूठी लगती है और जिसको भेदज्ञान करके निश्चय की बात सच्ची लगे, उसको व्यवहार की बात झूठी लगती है। निश्चय सच्चा लगे तो व्यवहार झूठा लगता है। मगर जिसको व्यवहार सच्चा है, सत्यार्थ है, उसको निश्चय सत्यार्थ नहीं लगता है।

जैसे देह और आत्मा व्यवहारनय से कहा जाए तो, एक पदार्थ है। मगर निश्चयनय से देखा जाए तो, देह और आत्मा कदापि एक होता नहीं है। ऐसे व्यवहारनय से देखा जाए तो चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवसमास, राग-द्वेष-मोह, वो सब जीव का भाव है। व्यवहारनय से कहा भी जाता है। कथन भी ऐसा आता है कि वो सब भाव जीव के हैं, मगर स्वभाव के सन्मुख जाकर देखें तो, यानि निश्चयनय से देखें तो, स्वाश्रित निश्चयनय से देखें तो, वो कोई भी भाव जीव के नहीं हैं। वो सब भाव व्यवहारनय से जीव के हैं, ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने कहा है। तो भी, क्या कहा? ये सब भाव व्यवहारनय से जीव के हैं, ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने कहा है। तो भी, सर्वज्ञ भगवान ने एक दूसरी बात भी कही है कि निश्चयनय से देखो तो, कोई भी भाव जीव के नहीं हैं, क्योंकि जीव का लक्षण जो परमपारिणामिकभाव, नित्य-ध्रुव, वो उसमें दिखाई देता नहीं है। तो निश्चयनय और व्यवहारनय का ये कथन चलता है, ये सारा समयसार (उससे) भरा (हुआ) है। उसमें से जो जीव को स्वाश्रित निश्चयनय का कथन सत्य लगता है, तो व्यवहारनय के विषय में अंदर आत्मबुद्धि छूट जाती है। व्यवहार रह जाता है। व्यवहार का पक्ष छूट जाता है।

ऐसे, जैसे कुम्हार के सद्भाव में, कुंभकार, घड़ा बनानेवाला है, ऐसा लोग कहते हैं। घड़ा को बनानेवाला हो, तो उसको लोक-व्यवहार (में) कहते हैं कि कुम्हार घड़ा बनाता है। तो कुम्हार की हाज़री में, निमित्त की हाज़री में उपादान अपना काम करता है। मिट्टी से घट होता है। मिट्टी अंतरनिमग्न व्यापक होकर, वो उसका कार्य करती है। उपादान अपना कार्य करता है। मगर निमित्त की हाज़री है। निमित्त की हाज़री में कार्य तो उपादान से होता है। उपादान ही अपना कार्य कर रहा है, मगर निमित्त की हाज़री देखकर, ऐसा कहा जाता है कि कुम्हार ने घड़ा बनाया। वो निश्चयनय का कथन है कि व्यवहारनय का कथन है, इतना विचार करने की बात है। विचार करके जो सत्य बैठे, वो बैठाओ। कथन तो ऐसा आता है।

कार्य करता है उपादान, अपनी स्वशक्ति से। उसके साथ परसंयोग का योग भी है, कुम्हार आदि। कुम्हार आदि बहुत चीज़ें है। मिट्टी में से जब घट पर्याय बनती है, तो उसका व्याप्य-व्यापक संबंध, कर्ता-कर्म संबंध घट के साथ होने पर भी, उसने मिट्टी ने किसकी हाज़री में घट बनाया? कि कुम्हार की

हाज़री में बनाया। कुम्हार ने बनाया, ऐसा नहीं है। तो निमित्त की हाज़री से देखते हैं, निमित्त ऊपर दृष्टि जिसकी है, मिट्टी के स्वभाव ऊपर जो नहीं देखते हैं, मात्र संयोग को देखते हैं, उसको ऐसा भ्रम हो जाता है कि कुम्हार ने घड़ा बनाया। वो बात १००% झूठी है। क्योंकि कुम्हार का हाथ, कुम्हार की इच्छा, उसका उपयोग, कोई मिट्टी में प्रविष्ट नहीं हुआ है। इसलिए दो द्रव्यों के बीच में कर्ता-कर्म संबंध का अभाव है। हाँ! इतनी सही बात है कि उपादान ने निमित्त के संयोग में अपना कार्य किया। इतनी बात सही है। तो ऐसा देखकर कुम्हार ने घड़ा किया (अर्थात् बनाया), ऐसा भ्रम हो जाता है। ऐसे दो-तीन दृष्टांत, बहुत दृष्टांत हैं, इसके बारे में।

अपने को तो अभी एक सूक्ष्म विषय लेना है कि यह भगवान आत्मा है, वह अपने उपादान से अपने आत्मा को जानने का कार्य करता है। जैसे मिट्टी घट को करती है, ऐसे अपना जो आत्मा भगवान है, उसमें ज्ञान प्रगट होता है, वो ज्ञान अपने आत्मा को जानने का कार्य करता है, वह उपादान की स्वशक्ति है। मगर उस समय शास्त्र निमित्त है, तो शास्त्र से ज्ञान हुआ ऐसा कहने में आता है, मगर ऐसा है (नहीं)। जो कुम्हार घट को करे, तो द्रव्यश्रुत, भावश्रुत को करे। द्रव्यश्रुत यानि जिनेंद्र भगवान की वाणी। उत्कृष्ट दृष्टांत देता हूँ मैं। आहाहा! तो ऐसे कार्य तो होता है उपादान से तीनोंकाल, मगर जो उपादान कार्य करता है, तो परसंयोग जो निमित्त भी होता है, तो कहा जाता है कि उससे ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान।

जैसे जब दिव्यध्वनि सुनता है जीव, सभा में बैठा है। अपना उपयोग वहाँ से हटाकर अंदर में लाया, तो जो इंद्रियज्ञान का उपयोग उसको (दिव्यध्वनिको) जानता था, वो उपयोग अंदर में नहीं आता है। वो उपयोग तो वहाँ रह जाता है और दूसरा अभिमुख उपयोग, अतींद्रिय ज्ञान प्रगट होकर, आत्मा का दर्शन कर लेता है। तो उपादान ने अपना कार्य अपने से किया, तो दिव्यध्वनि की हाज़री है वहाँ, तो ऐसा कहा जाता है कि सुनने से मेरे को आत्मज्ञान (हुआ)। भगवान की वाणी सुनी तो मेरे को आत्मज्ञान हो गया। ऐसा जो मानता है, वो निमित्त, उपादान को अलग-अलग नहीं मानता है, एक मानता है। निमित्त और उपादान, निश्चय-व्यवहार एक मानता है। ऐसा ज़रा सूक्ष्म विषय अभी आता है, इसलिए थोड़ी भूमिका मैंने रखी।

सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं- अभी अपना विषय चलता है, इसमें से देख लेना। सर्वज्ञ परमेश्वर फ़रमाते हैं, फ़रमान है, सर्वज्ञ भगवान का। आहाहा! कथन तो दो प्रकार का आएगा ही आएगा - निश्चय, व्यवहार। मगर उसमें से सत्यार्थ क्या है, वो निकालना, वो अपना काम है। **सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा फ़रमाते हैं लोकलोक जाननेमें आवे**, लोकालोक अपनी ज्ञान की पर्याय में आ जावे, जानने में आ जावे। वो (लोकालोक) तो नहीं आता है, मगर जानने में आवे, अपनी ज्ञान की पर्याय में, वो जानने में आवे...समझे कुछ? वो जानने में (लोकालोक) आवे, **ऐसी तेरी पर्याय नहीं है**! आहाहा! तो ऐसा तर्क होता है, कुतर्क, कि तो-तो सर्वज्ञ भगवान को आप उड़ाते हैं। लोकालोक अपनी ज्ञान की पर्याय में जानने में न आवे, तो-तो आप सर्वज्ञ को उड़ाते हैं। नहीं! सर्वज्ञ की सिद्धि इसमें होती है। उड़ाते नहीं है कोई।

लोकालोक ज्ञात हो, **ऐसी तेरी पर्याय नहीं है**, तो कैसी है? व्यवहार और निश्चय, दो के बीच में भेदज्ञान है। व्यवहार (नय) सत्यार्थ लगता है, उसको निश्चयनय झूठा लगता है और निश्चयनय सत्यार्थ

लगता है, उसको व्यवहारनय झूठा लगता है। कुम्हार से घड़ा तीनकाल में होता नहीं है। मिट्टी से घड़ा होता है।

तो क्या है? क्या जानने में आता है? लोकालोक मेरी ज्ञान की पर्याय में नहीं जानने में आता है, तो क्या है? सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया कि **तेरी ज्ञान की पर्याय को तू जाने-देखे - ऐसा तेरा स्वरूप है।** आहाहा! निश्चय-व्यवहार का झगड़ा है। समझे तो झगड़ा मिट जाए। व्यवहार को व्यवहार के स्थान में जान लेवे, निश्चय को (निश्चय में)। दो नय का ज्ञाता हो जाता है वो। झगड़ा मिट जाता है।

लोकालोक को जानते हैं आत्मा, अथवा आत्मा का ज्ञान, लोकालोक को जानता है, पर को जानता है। लोकालोक की जगह पर, पर लगाना। देहादि जानने में आता है। **ऐसा कहना, यह असद्भूत व्यवहार है**, प्रमाण से बाहर की बात लेना और परपदार्थ मेरे को जानने में आते हैं, वो असद्भूत व्यवहार है, शास्त्र का शब्द है वो। सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया कि वो असद्भूत व्यवहार (का) कथन है। असद्भूत व्यवहार कहाँ से आया? सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया। नय का स्वरूप तो सर्वज्ञ भगवान की वाणी में आया ना? नयचक्र में आया ना सब? तो इसमें एक असद्भूत व्यवहारनय है, एक सद्भूत व्यवहार है। तो ज्ञान पर को जानता है, वो असद्भूत व्यवहार है। बाद में, उसका भावार्थ देखते हैं **कि झूठा व्यवहार है।** असद्भूत, असत्य ऐसा है नहीं। लोकालोक की हाज़री में ज्ञान अपने को जानता है। सुनना ज़रा! लोकालोक की हाज़री के सद्भाव में भी ज्ञान अपने आत्मा को जानता है, तो लोकालोक की हाज़री में, ज्ञान ने अपने को जानने का कार्य कर लिया। उपादान ने अपना कार्य कर लिया, मगर लोकालोक की हाज़री में किया, तो लोकालोक (का) ज्ञान हो गया, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। जैसे कुम्हार घड़े को करता है, ऐसा। आहाहा!

झूठा व्यवहार है। आहाहा! अभी तो झूठे व्यवहार का पक्ष छूटे नहीं, तो सच्चा व्यवहार में कहाँ से आवे? उस व्यवहार से भी साध्य की सिद्धि नहीं होती है, सच्चे व्यवहार में (साध्य की सिद्धि नहीं होती है)। आहाहा! उसके ऊपर, उल्लंघन करके आगे बढ़कर अंदर में चले जाना, तो अनुभूति होती है। यह ज्ञान की पर्याय का निश्चय का प्रकरण चलता है।

ज्ञान की पर्याय का व्यवहार और ज्ञान की पर्याय का निश्चय, ऐसा आगम में पाठ है। ज्ञान की पर्याय का निश्चय, इसका नाम है कि जो ज्ञान अभिमुख होकर ज्ञायक को तन्मय होकर जान लेवे, उसका नाम, ज्ञान की पर्याय का निश्चय है। वो जो अपने स्वभाव को छोड़कर परपदार्थ को जाने, वो असद्भूत व्यवहार है और अपने को जानने के बाद भेद को जाने ज्ञान, उसका नाम सद्भूत व्यवहार है।

तो आचार्य भगवान, सर्वज्ञ भगवान फ़रमाते हैं कि पर को जानना तो असद्भूत, झूठा व्यवहार है। हाँ! इतना सही है कि परपदार्थ की हाज़री में ज्ञान अपने को जानता है। ऐसा नहीं है कि निर्विकल्पध्यान में जावे, तभी ज्ञान आत्मा को जाने, ऐसा नहीं है। हर समय अच्छिन्नधारा से सम्यग्ज्ञानी का ज्ञान, अपनी आत्मा को जानते हुए ही प्रगट होता है। नहीं जानते हुए प्रगट होता है, अज्ञानी के माफिक, ऐसा नहीं है। तो ज्ञान ही नहीं है।

तब सच्चा व्यवहार क्या है? वो झूठा जो व्यवहार है, तो सच्चा व्यवहार क्या है? कि अपनी ज्ञान

की पर्याय को जानना, वो सच्चा व्यवहार है और अपनी शुद्धात्मा को जानना, वो निश्चय है। इतनी बात है। अभेद को जानना, सो निश्चय। अभेद का भेद, राग तो अभेद का भेद ही नहीं है। जाति ही जुदी है। कजात है। अणमणता (नहीं मिलनेवाला) भाव, ऐसा लिखा है। कलश-टीका में लिखा है, अणमणता। उसमें चेतना का अभाव है, भैया!

चेतन, अचेतन को करे? राग, अचेतन, जड़ है। आहाहा! तू समयसार को मानता है कि नहीं? हाँ साहब! जिनवाणी को रोज़ नमस्कार करता हूँ। स्तुति भी बोलता हूँ। तो उसमें लिखा है कि राग जड़, अचेतन है। आहाहा! इसलिए आत्मा उसको करता नहीं है। कर्ता मानता है, अज्ञानी बनता है और मैं राग का अकर्ता हूँ, ज्ञान का कर्ता हूँ, तो ज्ञानी बन जाता है और बाद में राग थोड़ा आवे अस्थिरता का, परिपूर्ण यथाख्यात-चारित्र न हो, तहाँ तक तो उसको (राग) आता है, उसको जानता है और आगे जाकर ऐसा भी कह सकते हैं कि कर्तानय से (राग का) कर्ता है। मगर कर्तानय से कर्ता है, उस टाइम अकर्तानय से साक्षी भी है। दो नय का जोड़ा एक समय में है, इसलिए कर्ताबुद्धि नहीं होती है और थोड़ा राग, पर्याय राग को करती है, ऐसा भी है। मगर अकर्तानय साथ में होने से वो साक्षी है, राग का। ऐसे भोक्तानय और अभोक्तानय, दो प्रगट होते (हैं), साधक को। थोड़ा दुःख होता है, उसको भोगता है, मगर भोक्ताबुद्धि नहीं होती है क्योंकि अभोक्तानय साथ में साक्षी है। आहाहा! सब बात प्रवचनसार में है, ४७ नय में।

तब सच्चा व्यवहार क्या है? वह यह है; स्वयं जानन-जानने के भाववाला तत्व होने से स्वयं आत्मा जानन-जानन जाननेवाला है, करनेवाला नहीं है। आत्मा जाननेवाला है, जैसे चक्षु है ना, वो केवल दृश्यपदार्थ को दूर से देखती है। वैसे ही भगवान आत्मा और आत्मा का ज्ञान, उसमें जानना, जानना, जानना है, करना नहीं है। **स्वयं जानन-जाननहार, जानने के भाववाला तत्व होने से लोकालोक के जितने ज्ञेय हैं**, अभी सच्चे व्यवहार की बात थोड़ी बताते हैं, झूठा व्यवहार बताया। (सच्चा क्या?) कि सच्चा व्यवहार अपनी ज्ञान की पर्याय को जानता है। **लोकालोक के जितने ज्ञेय हैं, उन्हें और अपने को जानने की क्रियारूप अपने में (अपने अस्तित्व में) अपने कारण से परिणमता है।** परपदार्थ के कारण से नहीं, अपने कारण से परिणमता है, जाननक्रिया रूप।

वास्तव में तो यह जो ज्ञान की पर्याय है, वह ज्ञेय है। लोकालोक ज्ञेय नहीं है। तेरे ज्ञान की पर्याय ज्ञेय है कि जिस ज्ञान की पर्याय में आत्मा भी जानने में आता है, वो ज्ञान की पर्याय ज्ञेय है। आहाहा! **ज्ञान की पर्याय का पर (पदार्थ) ज्ञेय है - ऐसा कहना, वह व्यवहार है। ऐसी बात है।**

एक अपने भाईसाहब! ये प्रेमचंद जी दिल्लीवाले, उनका एक पोता है, छोटा। इधर बैठा है ना? खड़ा हो जा। क्या आया है शास्त्र में? बोल!

मुमुक्षु बालकः- **निश्चयनय से जो निरुपण किया हो, उसको तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और** (माइक दे दो)

उत्तरः- इधर आजा। वहाँ जा। बुलाओ इसको। लड़का क्या बोलता है? आहाहा! पी. सी. सेठ! छोटा लड़का बोलता है, हो। सेठी, सेठ नहीं। ठीक! मैं भूल जाता हूँ।

मुमुक्षु बालकः- **निश्चयनय से जो निरुपण किया हो, उसको तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरुपण किया हो उसको असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना।**

उत्तरः- श्रद्धान छोड़ देना। बैठ जा! यह सुनहरी वाक्य है, सुनहरी। टोडरमल साहब का (वाक्य)। ज्ञानी, निकट भव्य, धर्मात्मा थे। आहाहा! अल्पकाल में मुक्ति होनेवाली है, उसमें शंका नहीं। उन्होंने इस समयसार में से ये निकाला है। वो सब सारे समयसार के अंदर बीज हैं, सभी शस्त्रों के। हें? मूल तो वो ही है। ऐसा!

व्यवहारनय से जितना निरुपण है शास्त्र में, आगम में हो, वो सब असत्यार्थ जानकर, मानकर, उसका श्रद्धान छोड़ना। श्रद्धान छोड़ना, पर्याय को छोड़ना और शरीर को छोड़ना और कपड़ा निकाल देना, यह बात नहीं है। परद्रव्य की क्रिया करनेवाला आत्मा नहीं है। आहाहा! उसका श्रद्धान छोड़ दे, इतना कथन व्यवहार का है और निश्चयनय से जो निरुपण किया है, वो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना। आहाहा! सुनहरी वाक्य है। सुनहरे अक्षर से लिखने लायक़ है। रोज़ाना पढ़ने लायक़ है, पढ़ने लायक। आहाहा! एक दफ़े तो ज़रूर पढ़ना, फज़ल (सुबह) में उठकर जैसे णमोकारमंत्र बोलते हैं ना, तो सामने वो रखना। (बोर्ड बनाकर) पाँच दस रुपये में वो आता है, पेंटिंग कर देता है। ज़्यादा खर्च तो इसमें (नहीं है), पूनमभाई! ज़्यादा खर्च नहीं है। वो पूनमभाई, (दीवाल) में लगा देना। आहाहा! ज्ञानी की वाणी, वचन है। आहाहा!

मगर व्यवहार का वचन सत्य लगा और निश्चय का वचन, वो तो झूठा है, एकांत है (ऐसा कहता है)। निश्चयाभास हो जाएगा, ऐसा है, ऐसा। आहाहा! देखो! बड़ी मुश्किल से ज्ञानी की वाणी बाहर आयी। आहाहा! हमारे देश में एक कहावत है कि जब वो पिलूडी पके, कोई दाना, तब उसका मुँह आ जाए, खानेवाला का। ऐसा कुछ कहते हैं।

मुमुक्षुः- पाक पके जब .... रोग हो जाए

उत्तरः- हाँ! रोग आ जावे। जब वहाँ पाक हुआ बराबर, खाने का टाइम, तब यहाँ रोग आ गया। ऐसे जब बराबर टाइम पका भेदज्ञान का, अनुभव का, तब, अरे! यह तो निश्चय का कथन है, वो तो एकांत है। वो तो निश्चयभासी सब बन गए हैं। अरे! सब बन गए हैं तो बनने दो, तेरा काम क्या है? दूसरे आगम का मर्म न समझें और निश्चयभासी हो जायें, तो जवाबदारी गुरुदेव की नहीं है। अपनी प्रज्ञा के दोष से वो विपरीत मानता है। शास्त्र का दोष बिल्कुल नहीं है, आगम का दोष नहीं है, तेरा दोष है। आहाहा! तुझे पढ़ते नहीं आया, उसका अर्थ निकालते नहीं आया, उसका भावार्थ तुझे समझ में नहीं आया, तो श्रीगुरु क्या करें उसमें? आहाहा! श्रीगुरु का दोष नहीं है। तेरी प्रज्ञा का दोष है। आहाहा!

देखो! **पर (पदार्थ) ज्ञेय है - ऐसा कहना, वह व्यवहार है। ऐसी बात है। ज्ञेयों के आकार**, आगे। **ज्ञेयों का आकार अर्थात् ज्ञेयों का विशेष** - यानि उसका जैसा-जैसा पुदग़ल का भाव है, विशेष, पर्याय। **उनकी ज्ञान में झलक आती है**, उनके यानि ज्ञान की पर्याय में झलक आती है, प्रतिभास होता है, प्रतिबिम्ब होता है। प्रतिबिम्ब का निषेध नहीं है, प्रतिभास का निषेध नहीं है। क्योंकि इधर स्वच्छता है,

उधर ज्ञेयत्व है, तो जानने में आ जावे। आहाहा! जानता नहीं है, जणित (जानने में आ) जाता है।

उनकी ज्ञान में झलक आती है, अर्थात् उन संबंधी अपना ज्ञान, उस संबंधी अपना ज्ञान, जो ज्ञेय प्रतिभासित होता है, ऐसा अपना ज्ञान कि जिस ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। **अपने ज्ञान अपने में, अपने से परिणमित होता है। वह ज्ञान, ज्ञेयाकार दिखता है।** देखो! ये ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव होता है, तब सामान्यज्ञान का तिरोभाव, (यानि) जब मुझे ज्ञेय जानने में आते हैं, मुझे मेरा ज्ञान आत्मा जानने में आता नहीं, उसका नाम अज्ञान है। मेरे को पर जानने में आता है, स्व जानने में आता नहीं है, तो उसका नाम अज्ञान है। इसकी शास्त्रीय भाषा ऐसी है कि ज्ञेयाकार ज्ञान का आविर्भाव, ज्ञेय के संबंधवाली जो ज्ञान की पर्याय अर्थात् इंद्रियज्ञान, उसका आविर्भाव होता है, प्रगट होता है। तो सामान्यज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध करनेवाला अतींद्रियज्ञान, तिरोभूत हो जाता है, उत्पन्न होता नहीं है, उसका नाम अज्ञान है।

उनकी ज्ञान में झलक आती है। कितने तो ऐसा मानते हैं कि ज्ञान एक ही प्रकार का होता है। ज्ञान दो प्रकार का नहीं होता है। ज्ञान दो प्रकार का ही होता है। एक अतींद्रियज्ञान और एक (इंद्रियज्ञान)। अज्ञानी के पास एक प्रकार का ज्ञान है, साधक के पास दो प्रकार का ज्ञान है और परमात्मा के पास एक प्रकार का ज्ञान है, अतींद्रिय है वहाँ। आहाहा! तो इंद्रियज्ञान जो स्वभाव हो तो निकले ही नहीं। सिद्ध में इन्द्रियज्ञान होना चाहिए। आहाहा!

उनकी ज्ञान में झलक आती है, अर्थात् उन संबंधी अपना ज्ञान अपने में, अपने से परिणमित होता है। आहाहा! पर से नहीं। पर है तो परिणमता है, शास्त्र है तो आत्मज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। हाँ! शास्त्र की हाज़री में आत्मा का ज्ञान होता है, तो कहा जाता है कि शास्त्र से ज्ञान होता है, हुआ है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

वह ज्ञान, ज्ञेयाकार दिखता है। वह ज्ञान, है तो ज्ञानाकार, ज्ञेय के संबंधवाला... ज्ञेयलुब्ध उसको कहा जाता है, ज्ञेयलुब्ध, ज्ञेयों में आसक्त हो गया। मेरे को ज्ञेय जानने में आता है, वो ज्ञेयलुब्ध, ज्ञेयों में आसक्त, अज्ञानी हो गया। आहाहा!

वह ज्ञान, ज्ञेयाकार दिखता है - ऐसा कहा, तो भी, कहने में आवे तो भी, (परंतु) **वह ज्ञेयाकार हुआ नहीं**, आहाहा! ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुए, तो ज्ञान का ज्ञेयरूप होता है? और ज्ञेय का आकार उस रूप परिणमता है कि आत्मारूप परिणमता है वो ज्ञान? ज्ञानाकार ही है। **ज्ञेयाकार हुआ नहीं, वह तो ज्ञानाकार-ज्ञान की ही तरंगे हैं।** ज्ञानाकार है, वो तो। ज्ञान में ज्ञायक आत्मा जानने में आता है, तो ज्ञानाकार है। भले! ज्ञेय का प्रतिभास हुआ, मगर लक्ष्य ज्ञेय पर है कि आत्मा पर? दो का प्रतिभास होता है, स्वपरप्रकाशक, तब लक्ष्य कहाँ है? ज्ञान का लक्ष्य तो आत्मा पर ही रहता है। स्वपरप्रकाशक कहने पर भी, पर का लक्ष्य आ जाता नहीं (है)। दो का लक्ष्य तो होता नहीं है और पर का लक्ष्य हो तो अज्ञानी, स्व का लक्ष्य रहवे, होवे, रहवे, बने, तो ज्ञानी। आहाहा!

स्वपरप्रकाशक में तकलीफ़ हो गयी। स्व और पर दो जानने में आता है, इसलिए क्या हुआ? कि मेरा लक्ष्य दो पर गया। दो पर लक्ष्य जानेवाला है ही नहीं। या तो पर का लक्ष्य होता है, या तो स्व का

लक्ष्य होता है। आश्रय एक का है, दो का आश्रय कभी होता नहीं है। इंद्रियज्ञान, पर का आश्रय ले, तो वो तो इंद्रियज्ञान हो गया और अतींद्रियज्ञान आत्मा का आश्रय लेता है। ज्ञानी तो जुदा है। साधक होने से ज्ञान का दो भाग हो जाता है। एक अतींद्रियज्ञान और एक इंद्रियज्ञान। कोई तकलीफ़ नहीं। एक ज्ञान की पर्याय में, जैसे चारित्र की पर्याय में दो भाग हैं, ऐसे ज्ञान की पर्याय में भी दो भाग हो जाते हैं।

वह तो ज्ञानाकार-ज्ञान की ही तरंगे हैं। वो तो ज्ञान की ही कल्लोलें हैं, ज्ञान की ही पर्याय है। **आहाहा! जानन...जानन...जानन** तीन दफ़े जानन, जानन और जानन कर्ता, कर्ता और कर्ता, ऐसा लिखा नहीं। है ही नहीं, कहाँ से लिखें? आहाहा! अज्ञानी को ऐसा (लगे कि) थोड़ा कर्ता की बात करो, अकेला जानना, जानना मत रखो। थोड़ी करने की बात (रखो)। आहाहा! दृढ़ हो गयी है अंदर में कर्ताबुद्धि। आत्मा केवल अकर्ता-ज्ञाता है, उसकी दृष्टि में आता नहीं है।

जानन...जानन...जानन अपना स्वभाव है, आहाहा! ये सबका स्वभाव ऐसा है जानना, जानना, जानना, जानना, अपने को हों! आहाहा! पर को नहीं। पर (का) भले प्रतिभास हो, मगर पर का लक्ष्य होता है? "केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं", क्या लोकालोक को ऐसे-ऐसे (उसके सामने देखकर) जानते हैं? अपने को जानते-जानते लोकालोक उसमें जणित (जानने में आ) जाता है। जानता है अपने को, कहा जाता है कि पर को जानता हूँ, उसका नाम व्यवहार है। उसमें परवस्तु का जानना... हें? नहीं होता है। देखो! इसमें लिखा है।

तथापि उसका जानना यहाँ (अपने में) होता है, वह वास्तव में उसका (परज्ञेय का) जानना नहीं है; परज्ञेय भले ही निमित्त हों, तो भी परज्ञेय का जानना नहीं होता है। स्व का जानना होता है। कोहिनूर का हीरा है। एक हीरा मिल जावे ना, तो इंसान धनवान हो जावे। एक रतन मिल जावे, पाँच करोड़ रुपये का। हें? ऐसा लिखा है। कोहिनूर का हीरा इसमें है। आहाहा! लोगों को महिमा आती है उस हीरे की, माणिक की, लक्ष्मी की, पैसे की, यह बहुत पैसेवाला है, बहुत पैसेवाला है, बहुत पैसेवाला है। आहाहा! और जिसको पैसे की चाह होवे ना? जैसे वो कुत्ता है ना, उसको खाना देवें ना? तो पूँछ हिलाता है। पूँछ हिलाता है। समझे ना? पूँछ हिलाता है। ऐसे ही, पुण्य और पुण्य की रुचिवाला जीव, श्रीमंत के पीछे-पीछे घूमता है। आहाहा! क्या है उनके पास? धनवान के पास क्या है? मुनिराज के पास लक्ष्मी है, ज्ञान की। आहाहा! जो अपने पूजनीक हैं, मुनिराज। तीन कषाय के अभाव (रूप) शुद्धोपयोग में, आनंद में झूलते हैं। वो उनके पीछे जा ना। वहाँ मिलेगा। उसके (श्रीमंत के) पास कहाँ है? आहाहा!

वास्तव में पचास साल पहले का काल (और) आज का काल बदल गया है। धनवान, श्रेष्ठी जो वर्ग है, उसने, उनको, विद्वानों को दबाने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। पहले के काल में था, अब काल फिर गया। आहाहा! ऐसा हमको दिखाई दिया, इसलिए मैं बोलता हूँ। दुःख की मैं बात करता हूँ। आहाहा!

जानना नहीं है; जानने की दशा है, जो अपनी है, **उसका जानना है**। जानने की दशा जो अपनी है, उसको जानता है। ज्ञान तो अपनी आत्मा को जानता है। पर को नहीं जानता (है)। आहाहा! मगर श्रीमंत के पीछे पूँछ हिला-हिलाकर जाता है। क्या जाता है? इधर आ जा ना आत्मा में, इधर माल है। वहाँ कहाँ माल है? आहाहा! क्योंकि पुण्य की रुचि है ना, पुण्य के फल की। उसको आदर देता है। निर्धन

को आदर नहीं देता है। पानी भी नहीं पिलाता है, आओ भी नहीं कहता है और वो आवे, आओ पधारो-पधारो सेठजी पधारो-पधारो। क्या पधारो-पधारो? क्या हो गया तेरे को? आहाहा! तो विवेक नहीं करना (चाहिए क्या)? जो (तेरे को) विवेक हो, तो भगवान आत्मा को आमंत्रण दे दे। हाँ! पधारो! पधारो! आहाहा! फटे हुए कपड़े हों, मुमुक्षु हो। आओ! आओ! आहाहा!

यह तो न्याय से बात है, इसे समझना तो पड़ेगा न! कोई समझा थोड़े ही देगा? क्या कहते हैं कि अपनी ज्ञान की पर्याय, ज्ञान की पर्याय में जानने में आती है। पर भले जानने में आवे, मगर उसको जानने जाता नहीं। जानने में आने पर वहाँ लक्ष्य नहीं है। क्या कहा? ये पदार्थ जानने में तो आया, मगर ज्ञान किसको जानता है? कारण क्या है? जानने में आया, तो भी उसको नहीं जानता है, इसका कारण क्या (है)? सोचो कुछ? कि वहाँ लक्ष्य है नहीं। लक्ष्य इधर से छूटता नहीं। जिसका लक्ष्य है, वो ही जानने में आता है। जिसका लक्ष्य नहीं है, वो जानने में आता नहीं है। आहाहा! जानने में आने पर भी जानता नहीं है।

देखे छतां नहीं देखतो, बोले छतां अबोल ।
चाले छतां नहीं चालतों, तत्वस्थित अडोल ॥

अपने मुनिराज! आहाहा, पंचपरमेष्ठी। **णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणम्।** आहाहा! त्रिकालवर्ती हो! आहाहा! जो तीन कषाय के अभाव, आनंद में झूलते हों। आनंद का भोजन नित्य करते हों, वो हमारे मुनिराज हैं। उनको हम कोटि-कोटि वंदन करते हैं। आहाहा!

इसे समझना तो पड़ेगा न! कोई समझा थोड़े ही देगा?

देखो! अभी दर्पण का दृष्टांत देते हैं। **देखो! दर्पण के दृष्टांत से इस बात को समझते हैं**- मथाला (शीर्षक है)। हेडलाईन उसका। अभी नीचे। **जैसे दर्पण के सामने कोयला**, कौलसा हाँ! काला। **अग्नि इत्यादि रखे हों वे दर्पण में दिखाई देते हैं परंतु वे दर्पण से भिन्न चीज़ है न?** ये तो भिन्न चीज़ है, दर्पण भिन्न है, कोयला भी भिन्न है, अग्नि भिन्न है। **दर्पण में तो उन पदार्थों की झलक दिखाई देती है**, वो पदार्थ तो आता नहीं है, झलक दिखती है।

परंतु क्या कोयला और अग्नि इत्यादि दर्पण में हैं? दर्पण में तो दर्पण की स्वच्छता का अस्तित्व है। उसमें तो कोयला या अग्नि आयी नहीं। वह तो भिन्न पदार्थ है। **दर्पण में तो दर्पण की स्वच्छता का अस्तित्व है।** दर्पण में दर्पण की स्वच्छता का अस्तित्व है। कालापना इधर आया नहीं है। उष्णपना इधर आया नहीं है।

यदि अग्नि इत्यादि उसमें प्रविष्ट हों तो दर्पण अग्निमय हो जाये, उसे हाथ लगाने से हाथ जल जाये, मगर ऐसा होता नहीं है। **परंतु ऐसा है नहीं। दर्पण, दर्पण की स्वच्छता के परिणाम से स्वयं ही स्वयं से ही परिणमित हुआ है।** कोलसा है तो स्वच्छता है? अग्नि है तो इधर स्वच्छता है? नहीं है। स्वच्छता निरपेक्ष होती है। स्वभाव निरपेक्ष होता है। विभाव कथंचित् निरपेक्ष कि कथंचित् सापेक्ष होता है। मगर त्रिकालस्वभाव तो त्रिकाल निरपेक्ष होता है, उसमें कोई पर की अपेक्षा होती नहीं है। इसका नाम

पारिणामिकभाव है।

स्वच्छता के परिणाम...स्वयं ही स्वयं से परिणमित हुआ है; कोयला या अग्नि उसमें कुछ है ही नहीं। समझ में आया कुछ? समझ में कुछ आया? सारा (समझ में) आ जाये तो-तो निहाल हो जावे। समझाणु कांई? गुजराती में। समझाणु कांई? थोड़ा समझ में आया? ज़रा समझ में आया? ये सत् का एक पैसा समझ में आ जावे ना....पच्चीस साल पहले वो, उसको भाईसाहब को कहा था, सोनगढ़ में, प्रेमचंद जी। बार-बार आते थे, मेरे पास।

मैंने प्रेमचंद जी को कहा, सत् का एक पैसा बस है। क्या कहा? मैंने कहा, सत् का एक पैसा बस है। निन्यानवे पैसे इधर आ जाएँगे। आहाहा! बाक़ी व्यवहार के १०० पैसे हों तेरे पास, कौंड़ी की क़ीमत नहीं है। आहाहा! अरे! सत् के पक्ष (में) तो आ जाओ, स्वभाव के पक्ष में तो आ जाओ, प्राप्ति तो स्वकाल में होगी, प्राप्ति तो स्वकाल में होगी। मगर स्वभाव के पक्ष में तो आजा। आहाहा! यशपालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

विभाव के पक्ष में पड़ा है। व्यवहार के पक्ष में पड़ा है। निमित्त के पक्ष में पड़ा है। आहाहा! बाक़ी कहते हैं कि सम्यग्दर्शन होता नहीं। कहाँ से होवे? पक्ष तो व्यवहार का है। निश्चय का पक्ष तो...भाषा ही नहीं बदली अभी तो। कर्ता की बात आती है। आत्मा ज्ञाता है, ऐसी बात आनी चाहिए। आत्मा ज्ञाता है, ऐसी बात आनी चाहिए। भाषा आनी चाहिए। जो अभी विद्वान जाने, जानेवाले हैं ना, इसलिए विद्वान के लिए मैं, छोटे-छोटे बालक २२ वर्ष, २४ वर्ष और २६ वर्ष के आनेवाले हैं ना, इसलिए मैं कहता हूँ। आहाहा! बड़े आदमी के लिए नहीं कहता हूँ। आहाहा! अरे! भाषा तो बदल, भाव तो बाद में बदलेगा। भाषा तो बदल कि मैं ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ। भाषा तो बदल।

एक दस दफ़े तो, दस दफ़े तो खानगी (अकेले) में बोल। तो एक (बार) अहमदाबाद में एक बात की। तो वो भी एक पहले णमोकारमंत्र की माला फेरता है भाई, अपना मुमुक्षु। बाद में, मैं ज्ञाता हूँ, कर्ता नहीं हूँ, ज्ञाता हूँ, कर्ता नहीं हूँ। ऐसे हिम्मतभाई के घर भावनगर (में) गया। समझे? वहाँ भी सब बैठे थे, ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ, बस। णमोकारमंत्र बोलने के बाद ऐसा करना कि ज्ञाता हूँ और कर्ता नहीं हूँ। आहाहा! ये भाषा तो बदल तो भाव बदलेगा, बदलेगा। आहाहा! मगर मैं कर्ता हूँ, मैं कर्ता हूँ। पुण्य से धर्म होता है। पुण्य-पाप करना चाहिए। आहाहा! तू स्वभाव से बाहर निकल गया, बिल्कुल। ऐसा तेरा स्वभाव है। ज्ञाता तेरा स्वभाव है। आहाहा! निरपेक्ष स्वभाव है। त्रिकालस्वभाव है। आहाहा!

यह क्या कहा? लो! फिर से! एक ओर दर्पण है, दर्पण है, उसके सामने एक ओर अग्नि और बर्फ़ है। अग्नि, अग्नि में लवक-झवक होती है। लवक-झवक समझे? अग्नि। हें? ऐसी होती है। ऊँची-नीची होती है ना। हाँ! ऊँची-नीची। **लवक-झवक होती है। और बर्फ़ बर्फ़ में पिघलता जाता है,** बर्फ़ का पानी हो जाता है, दर्पण सामने हो। समझे? बर्फ़, बर्फ़ का काम करता है। अग्नि, अग्नि का काम करती है। उस समय दर्पण में भी बस ऐसा ही दिखता है। जैसा वहाँ है ना, वैसा ही दिखता है। आहाहा!

उस समय दर्पण में भी बस ऐसा ही दिखता है तो क्या दर्पण में अग्नि और बर्फ़ है? नहीं; अग्नि और बर्फ़ का होना तो बाहर अपने-अपने में है, दर्पण में उसका होनापना (अस्तित्व) नहीं है।

आया ही नहीं है दर्पण में। ऐसे ज्ञान में दुःख आता ही नहीं है। उपयोग में दुःख नहीं आता है, तो ज्ञायक में दुःख कहाँ से आवे? आहाहा! ऐसा भेदज्ञान करना चाहिए। **बाहर अपने-अपने में है। दर्पण में उसका होनापना (अस्तित्व) नहीं है। वे दर्पण में वे प्रविष्ट नहीं हैं।** प्रवेश नहीं होता है, दर्पण में अग्नि (का)। **दर्पण में तो दर्पण की उसरूप स्वच्छ दशा हुई है, वह है। अग्नि और बर्फ़ सम्बन्धी दर्पण की स्वच्छता की दशा, वह दर्पण का स्वयं का परिणमन है।** दर्पण का स्वच्छत्व परिणमन अपने से है। अपनी शक्ति से है। वो सामने है, तो स्वच्छता इधर है, ऐसा नहीं है। आहाहा! कोयला हो, तो काला हो गया और कोयला हटाओ, तो स्वच्छ हुआ, ऐसा नहीं है। स्वभाव से स्वच्छ है। कोयले का सद्भाव कि असद्भाव, स्वभाव से स्वच्छता है, दर्पण की। आहाहा!

कर्म का उदय हो कि कर्म का उदय न हो, ज्ञान अपनी आत्मा को जानता है। क्या कहा? कर्म का उदय हो कि कर्म का अनुदय हो, ज्ञान अपनी आत्मा को समय-समय पर जानता है। आहाहा! प्रत्येक समय, प्रत्येक जीव अपनी आत्मा को ही जानता है। मानता नहीं है, बस। माने तो सम्यग्दृष्टि हो जावे, ऐसा लिखा है, समयसार में। समयसार का वंदन रोज़ करता है और समयसार में लिखा है, वो मानता नहीं है। आहाहा!

दर्पण में तो दर्पण की उसरूप स्वच्छ दशा हुई है, वह है। अग्नि और बर्फ़ सम्बन्धी दर्पण की स्वच्छ की दशा, वह दर्पण का स्वयं का परिणमन है अग्नि और बर्फ़ का उसमें कुछ है ही नहीं; अग्नि और बर्फ़ ने उसमें कुछ किया ही नहीं, वे तो भिन्न पदार्थ हैं। भैया! यहाँ स्वच्छता में कहाँ अग्नि आ गयी तेरी? आहाहा! ऐसे ज्ञान में राग कहाँ आ जाता है? राग दाह है ना, दाह। लिखा है ना? आया ना दाह।

मुमुक्षुः- **राग आग दहे सदा तातें समामृत सेइए।**

उत्तरः- आहाहा! राग तो दाह है, अग्नि की जगह राग है। अग्नि जो दर्पण में आ जावे, तो अपने उपयोग में राग आ जावे। राग (उपयोग में) आता ही नहीं है। राग आ गया, ऐसी भ्राँति हो गयी, वो अज्ञान है तेरा। आहाहा!

उसमें कुछ किया ही नहीं, वे तो भिन्न पदार्थ हैं। टाइम है दस मिनिट। **इसी प्रकार**... अभी टाइम थोड़ा है ना। आज दोपहर में..... आज अभी और दोपहर में। तो इसमें सब आ जाएगा। दोपहर तक में, सब बहुत माल तो आ जाएगा।

ये पूरा तो इधर होता है। जो गुरुदेव ने फ़रमाया है कि तू तेरी ओर देख। ऐसे (यहाँ-वहाँ) मत देख। युगल जी साहब ने कहा था, वहाँ भिंड में (कि) जो बाहर देखता है ना, उसकी नियत ख़राब है। क्यों बाहर देखता है तू? ऐसा शब्द। आहाहा! कड़क शब्द निकाला। मेरे को बहुत अच्छा लगा कि तू क्यों बाहर देखता है? तेरी नियत ख़राब है। इधर (अंदर) में देख ना।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, आहाहा! दर्पण का दृष्टांत पूरा हुआ।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, हो! सब भगवान हैं। स्वभाव से सब भगवान हैं। पर्याय को गौण कर दे। कल कहा था ना

जो निगोद में सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मंझार ।
निश्चयभेद कछुनाहीं, भेद गिने संसार (मिथ्यात्व) ।।

संसार कहो कि मिथ्यात्व, एक ही बात है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, आहाहा! भगवान कहनेवाला, आहाहा! आया था और अपना काम करके चला गया। भारत में ऐसा बनाव बनता है। ज्ञानी कहते जाते हैं और चले जाते हैं। कहते जाते हैं और चले जाते हैं। भारत में ऐसा है। अन्यमत में, अमेरिका में, वहाँ तो कुछ है नहीं, रशिया में। आहाहा! इधर भारत में ऐसा है। ज्ञानी कहते जाते हैं, आत्मा का स्वरूप और चले जाते हैं। आहाहा! अल्पकाल में मुक्ति वहाँ मिल जाएगी। आहाहा! ऐसा इधर प्रवाह टुकड़े-टुकड़े में है, धारावाही नहीं है। पंचम काल है ना। आहाहा! धारावाही ज्ञानी मिलना बहुत मुश्किल है। कभी-कभी काल ऐसा आता है कि कोई ज्ञानी ही न हो। कभी-कभी ऐसा काल आ जाता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, भगवान आत्मा को (भगवान) कहना और उसको राग को कर्ता कहना। भगवान को गाली देता है? क्या कहा? आहाहा! आत्मा को भगवान कहना और उसको राग का करनेवाला मानना, वो तो भगवान को गाली दिया। भगवान राग को करे? आहाहा! क्या हो गया तेरे को? आहाहा! आत्मा, आत्मा का ज्ञान करे, वो भी कथंचित् है। तो राग का कर्ता है और कर्म का और कर्म बांधता है और आयु बांधता है और कर्म भोगता है, साता वेदनीय, असाता वेदनीय। आहाहा! कहाँ गयी तेरी नज़र? जड़-कर्म में गयी, बुद्धि जड़ हो गयी। ज्ञान ढँक जाता है उसका। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा स्वच्छ चैतन्य दर्पण है, स्वच्छ चैतन्यदर्पण है। कभी? तीनोंकाल। आहाहा! तो ये मलिनता किसकी है? मलिनता आश्रव की है। जीव की मलिनता होती नहीं है। नवतत्व है, सर्वज्ञ भगवान ने कहा। आश्रव को मलिन कहा है। जीव को मलिन कहा नहीं है। जीव मलिन होता ही नहीं है। आहाहा! आश्रव है, वो मलिन है। कौन ना बोलता है? है। ठीक है! मगर जीव है, मलिन? आहाहा! आश्रव को मलिन देखकर (जीव को मलिन कह दिया), दृष्टि वहाँ है ना। तो मैं मलिन हो गया, रागी हो गया, दुःखी हो गया, ऐसी भ्राँति हो गयी, भेदज्ञान का अभाव होने से।

स्वच्छ चैतन्य दर्पण है, उसके ज्ञान में ज्ञेयों के आकार की झलक आने पर, ज्ञान ज्ञेयाकार दिखता है। ज्ञान ज्ञेयाकार दिखता है। है नहीं, दिखता है। **सामने जैसे ज्ञेय हैं, उसी प्रकार की विशेषतारूप अपनी ज्ञान की दशा होने पर, मानो कि ज्ञान, ज्ञेयाकार हो गया हो, ऐसा दिखता है** हुआ नहीं (है) ज्ञेयाकार, वो तो ज्ञानाकार रहता है। आकार यानि उस स्वरूप होता नहीं है।

अपनी ज्ञान की दशा होने पर, मानो कि ज्ञान, ज्ञेयाकार हो गया हो, ऐसा दिखता है परंतु ज्ञान, ज्ञेयाकार हुआ ही नहीं है, ज्ञेयाकार कहना, वो व्यवहार है। ज्ञानाकार जानना, वो निश्चय है। **ज्ञानाकार ही है**; देखो! ज्ञानाकार ही है और ज्ञेयाकार नहीं है। प्रमाण से ज्ञानाकार भी है और ज्ञेयाकार भी है। नय से देखो तो, विधि-निषेध में आओ तो, ज्ञानाकार है और ज्ञेयाकार नहीं है। उसमें साध्य की सिद्धी होती है। प्रमाण में साध्य की सिद्धी नहीं होती है। प्रमाण में से निश्चय निकालना चाहिए।

स्वपरप्रकाशक में से स्वप्रकाशक निकालना चाहिए, तो साध्य की सिद्धी होती है। **परंतु ज्ञान**,

ज्ञेयाकार हुआ ही नहीं, **ज्ञानाकार ही है**; आहाहा! रागरूप होता ही नहीं ज्ञान। आत्मा का ज्ञान आत्मारूप रहता है। ज्ञानाकार है, ज्ञान का आकार, ज्ञान का स्वरूप है।

अर्थात् वे ज्ञेय की कल्लोलें नहीं, वो ज्ञान की तरंगे है। आत्मा, आत्मा को जानता है, वो ज्ञान की तरंग पर्याय है। **परंतु ज्ञान की ही कल्लोलें हैं**, कल्लोल यानि पर्याय। **ज्ञान की ही दशा है**; **ज्ञेयों का उसमें कुछ है नहीं है। समझ में आया कुछ?** लो अभी इतना हो गया और टाइम हो गया थोड़ा। पाँच मिनिट बाक़ी है, थोड़ा पैर में दर्द है।

जिनवाणी स्तुति।